(देश देशान्तरों में प्रचारित, सब से सस्ता, उच्च कोटि का आध्यात्मिक-पत्र)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई ।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ॥

वार्षिक मूल्य २॥) | सम्पादक—श्रीराम शर्मा । | एक अङ्क ।=)

वर्ष ४ | मथुरा, १ अक्टूबर सन् १९४३ ई० | अङ्क १०

अपने वचन का पालन करिए !

आत्म सम्मान को प्राप्त करने और उसे सुरक्षित रखनेका एक ही मार्ग है, वह यह कि 'ईमानदारी' को जीवन की सर्वोपरि नीति बना लिया जाय। आप जो भी काम करें उसमें सचाई की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिए। लोगों को जैसा विश्वास दिलाते हैं उस विश्वासकी रक्षा कीजिए। विश्वासघात, दगाबाजी, वचन पलटना, कुछ कहना और कुछ करना, मानवता का सबसे बड़ा पातक है। आजकल वचन पलटना एक फैशन सा बनता जा रहा है, इसे हलके दर्जे का पाप समझा जाता है पर वस्तुतः अपने वचन को पालन न करना, जो विश्वास दिलाया है उसे पूरा न करना बहुत ही, भयानक, आत्मघाती सामाजिक पाप है। धर्म आचरण का अ, आ, इ, ई, वचन पालन से आरंभ होती है। यह प्रथम सीढ़ी है जिस पर पैर रखकर ही कोई मनुष्य धर्म की ओर, आध्यात्मिकता की ओर, बढ़ सकता है।

आप जबान से कहकर या बिना जबान से कहे या किसी अन्य प्रकार दूसरोंको जो कुछ विश्वास दिलाते हैं उसे पूरा करने का शक्ति भर प्रयत्न कीजिए, यह मनुष्यता का प्रथम लक्षण है। जिसमें यह नहीं वह सच्चे अर्थों में मनुष्य नहीं कहा जा सकता और न उसे वह सम्मान प्राप्त हो सकता है जो एक सच्चे मनुष्य को होना चाहिए।

सुधा बीज बोने से पहिले, काल कूट पीना होगा।
पहिन मौत का मुकुट विश्व-हित, मानव का जीना होगा॥

वर्ष ४ | मथुरा, १ अक्टूबर सन् १९४३ ई० | अङ्क १०

उद्बोधन

[रचियता—श्री० जनार्दन पाण्डेय शास्त्री, सालम]

जागृति का प्रबल प्रकाश लिये, ओ भीषण पथ के पथिक ! चलाचल ॥
दुर्दिवसों की इन घड़ियों में ।
जीवन की उलझी लड़ियों में ॥
मधुसुमधुर उपहास लिये ओ, इस दुनियां के व्यथित ! चलाचल ॥
आगे ऊंचे पर्वत तेरे ।
पीछे से है सागर घेरे ॥
मनमें अनुपम उल्लास लिये तू भीत न हो, मत सोच बलाबल ॥
आंधी आई तूफान उठा ।
दुखिया का दुःखमय गान उठा ॥
अन्तर में प्रेमाभास लिये तू सतत निरंतर अविरत चल ॥
मग में कांटों के जाल बिछे ।
यह समझ दुशाले, शाल बिछे ॥
ओ न्यायी ! न्याय विकाश लिये तू निज गतिसे कुछ शीघ्र चलाचल ॥

इस बात से इनकार करते हैं कि उसे अनावश्यक महत्व दिया जाय—सर्वोपरि स्थान दिया जाय। भोजन, वस्त्र, अध्ययन, अतिथि सत्कार, विपत्ति निवारण के लिए जितने पैसे की जरूरत है उतना कमाना चाहिए और बिना कंजूसी किये आत्मोन्नति के कार्यों में उसे विवेक पूर्वक खर्च करना चाहिए। जीवन यापन में पैसा एक साधन की तरह प्रयोग होना चाहिए, वह 'परम लक्ष' नहीं बन जाना चाहिए। यदि ईश्वर की कृपा से आपके व्यवसाय द्वारा "आवश्यकताओं को पूर्ण करने" लायक आय हो जाती है तो कोई कारण नहीं कि अध्ययन, आत्मोन्नति, सत्संग, स्वाध्याय, परमार्थ, परोपकार जैसे अमूल्य तथ्यों की अवहेलना करें और पागल की तरह पैसे को रट लगाते रहें। अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखिए, निर्वाह और उन्नति के मार्ग पर चलते हुए जितने के बिना काम नहीं चल सकता उतना ही संचय कीजिए, जिन्दगी भर के लिए आज ही जमा कर लेनेकी योजना मत बनाइए, ईश्वर के राज्य में ऐसी समुचित व्यवस्था है कि आपको यथा समय सब कुछ मिलता रहेगा, प्रभु पर विश्वास कीजिए और सीमित मात्रा में संग्रह कीजिए। अपनी बढ़ी हुई अनावश्यक जरूरतों को घटा डालिए ताकि धन की प्यास कम होजाय। नियत व्यवसाय द्वारा जीबिका कमा लेनेके उपरान्त अपने मस्तिष्क को दूसरी तरफ लगाइए, ज्ञान का संचय कीजिए, आत्मा को ऊँचा उठाने की साधना कीजिए, परमार्थ में प्रवृत्त हूजिए।

मनुष्य की महत्ता उसको आत्मिक सम्पत्ति के अनुसार, ज्ञान के अनुसार, विचार और कार्यों के अनुसार नापिये, रुपयों की गड्डी से और सताने की शक्ति के अनुसार नहीं। कोई व्यक्ति अधिक सताने की शक्ति रखता है या अधिक पैसे वाला है केवल इसी कारण उसे महत्व मत दीजिए, इसी कारण उसके प्रशंसक एवं सहायक मत बनिए। निर्धन गुणवानों की सतयुग में मान्यता थी, पैसा न होना कोई अयोग्यता नहीं समझी जाती थी, वरन् गुण, ज्ञान और आचरण का अभाव, तिरष्कार का, लघुता का कारण होताथा। अब हमें उसी प्राचीन राजमार्ग की ओर लौट चलना होगा, पैसे की अपेक्षा श्रेष्ठ आचरण को बड़प्पन की कसौटी बनाना होगा।

आप कलियुग से घृणा कीजिए, उसके प्रमुख निवास स्थान को सर्वोपरि स्थान देने से इनकार कर दीजिए, पैसे के बांटों को मनुष्यता की महत्ता को मत तौलिए, अब तक धन में सुख की खोज कर चुके अब ज्ञान और आचरण में उसे तलाश कीजिए, धन संग्रह की लिप्सा छोड़िए, अनावश्यक खर्चों को हटाकर सादगी का जीवन व्यतीत कीजिए, संतुष्ट रहिए, सम्पदा जमा हो तो उसे सत्कर्मों के लिए धरोहर समझिए। अब हम सतयुग की ओर-धर्म की ओर-ईश्वर की ओर-कदम बढ़ातेहैं इसलिए निश्चय करते हैं कि कलियुग-पाप के निवास स्थान से सावधान रहेंगे, परीक्षित की तरह उसके चंगुल में फँसकर अपना सर्वनाश न होने देंगे। पैसे को सर्वोपरि स्थान देकर कलियुग को हमने सर्व व्यापी बनाया है अब उसको पदच्युत करेंगे, असत्य को हटाकर सत्य की स्थापना करेंगे।

—श्रीराम शर्मा,

जैसे कि काष्ठ का पैदा हुआ कीड़ा काठ ही को नष्ट कर देता है उसी तरह अधर्म करने वाले को अधर्म ही नष्ट-भ्रष्ट करके नरक में गेर देता है।

+

बुद्धिमान् किसी से अपने कष्टों को बैठकर नहीं रोते हैं वे तो अपने दुःखों का सामना करते हुए उनके निवारण के लिए कठोर परिश्रम करते हैं।

+

सत्य और निडरता दोनों का साथ है, सच्चा आदमी हमेशा निर्भय रहता है।

+

प्रेम ही सर्वोपरि है।

(महात्मा जेम्स एलन)

ईश्वरीय ज्ञान और निस्वार्थ प्रेम के अनुभव से ा का भाव नष्ट हो जाता है, तमाम बुराइयां रफू र हो जाती हैं। और वह मनुष्य उस दिव्य को प्राप्त कर लेता है जिसमें प्रेम, न्याय और कार ही सर्वोपरि दिखलाई पड़ते हैं।

अपने मस्तिष्कको दृढ़ निष्पक्ष तथा उदार भावों ी स्थान बनाइए अपने हृदय में पवित्रता और दारता की योग्यता लाइए, अपनी जबान को चुप हने तथा सत्य और पवित्र भाषण के लिए तैयार ीजिए पवित्रता और शक्ति प्राप्त करने का यही ार्ग है और अन्त में अनन्त प्रेम भी इसी तरह ाप्त किया जा सकता है, इस प्रकार जीवन बिताने े आप दूसरों पर विश्वास जमा सकेंगे, उनको पने अनुकूल बनाने की कोशिस की दरकार न होगी। बिना विवाद के आप उनको सिखा सकेंगे, बिना अभिलाषा तथा चेष्टा के ही बुद्धिमान लोग आपके पास पहुंच जायेंगे, लोगों के हृदय को अना-ास ही आप अपने वश में कर लेंगे क्योंकि प्रेम सर्वोपरि, सबल और विजयी होता है। प्रेम के विचार, कार्य और भाषण कभी व्यर्थ नहीं जाते।

इस बात को भली प्रकार जान लीजिए कि प्रेम विश्वव्यापी है, सर्व प्रधान है और हमारी हर एक जरूरत को पूरा करने की शक्ति रखता है। बुराइयों ो छोड़ना अन्तःकरण की अशान्ति को दूर भगाता है। निस्वार्थ प्रेम में ही शान्ति है, प्रसन्नता है, अमरता है और पवित्रता है।

आशावादी आस्तिक।

(महात्मा गान्धी)

आशावाद आस्तिकता है। सिर्फ नास्तिक ही निराशा बादी हो सकता है। आशावादी ईश्वर का डर मानता है, विनय पूर्वक अपना अन्तर नाद सुनता है उसके अनुसार बरतता है और मानता है कि 'ईश्वर जो करता है वह अच्छेके लियेहीकरताहै'

निराशावादी कहता है 'मैं करता हूँ' अगर सफलता न मिले तो अपने को बचाकर दूसरे लोगों के मत्थे दोष मढ़ता है, भ्रम वश कहता है कि "किसे पता ईश्वर है या नहीं" और खुद अपने को भला तथा दुनियां को बुरा मानकर कहता है कि 'मेरी किसी ने कद्र नहीं की' ऐसा व्यक्ति एक प्रकार का आत्मघात कर लेता है और मुर्दे की तरह जीवन विताता है।

आशावादी प्रेम में मगन रहता है, किसी को अपना दुश्मन नहीं मानता। भयानक जानवरों तथा ऐसे जानवरों जैसे मनुष्यों से भी वह नहीं डरता, क्योंकि उसकी आत्मा को न तो सांप काट सकता है और न पापी का खंजर ही छेद सकता है, शरीर की वह चिन्ता नहीं करता क्योंकि वह तो काया को काच की बोतल समझता है। वह जानता है कि एक न एक दिन तो यह फूटने वाली है, इसलिए वह है, इसलिए वह उसकी रक्षा के निमित्त संसार को पीड़ित नहीं करता वह न किसी को परेशान करता है न किसी की जान पर हाथ उठाता है वह तो अपने हृदय में वीणा का मधुर गान निरंतर सुनताहै और आनंद सागर में डूबा रहता है।

निराशावादी स्वयं राग द्वेष से भरपूर होता है, इसलिए वह हर एक को अपना दुश्मन मानता है और हर एक से डरता है, वह मधु मक्खियों की तरह इधर उधर भिनभिनाता हुआ बाहरी भोगों को भोग कर रोज थकता है और रोज नया भोग खोजता है, इस तरह वह अशान्त, शुष्क और प्रेम रहित होकर इस दुनियां से कूच कर देता है।

वाणी विज्ञान।

(श्री० द्वारिका प्रसाद भट्ट, चयियानी)

अधिकांश व्यक्ति यही आशा करते हैं कि मेरी बातों को सभी बिना तर्क के स्वीकार करलें और ऐसा न होने पर या तो वह दुराग्रह पर उतर आते हैं अथवा संताप करके मौन धारण कर लेते हैं और द्वेष भाव को पोषित करके बदले या अप्रतिष्ठा की ताड़ में रहते हैं। परन्तु जो सत्यनिष्ठ हैं वे एकान्त में विचार कर पवित्र भावों को स्थान देते हैं और ऐसों ही की आत्मा मुक्त पथ की अनुगामिनी हो सकती है। बहुत से व्यक्ति कलह के भय से तर्क करना नापसन्द करते हैं सम्भवतः यही उक्ति झूंठे को प्रोत्साहित करके समाज के अन्दर निन्दित घटनाओं का कर्ता बना देती है।

'मूकता' एक प्रकार से विरोधी को स्वीकृत देना है कहा भी है:—"खामोशी नीम रजाअत" यह वाणी का संयम नहीं इसे तो मूर्खता छिपाने का एक गुण कहा जाता है। वास्तव में आवश्यकता इस बात की है कि हम जो कुछ कहें उसे तात्कालिक क्रिया द्वारा सोचते भी जांय कि यह शब्द काव्य मय के अतिरिक्त कर्तव्यमय भी हों जब तक सांक्रियता का आभास न होगा तब तक वाणी का प्रभाव निरर्थक रहेगा।

कुछ लोग औरों से न बोलने में ही अपनी शान समझते हैं परन्तु मन ही मन इस फिक्र में लगे रहते हैं कि कोई हम से बोले; गोकि ऐसे लोग मुँह, आंख, हाथ आदि के इशारों से काम अधिक लेते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि मानसिक शक्तियों को अ[illegible] उत्तेजित रहना पड़ता है और शरीर पर विषाक्त प्रभाव पड़ने से स्वास्थ्य क्षीण होता रहता है। ऐसे व्यक्ति हंसमुख नहीं होते और यदि हं[illegible] भी हैं तो झूंठी हंसी। फलतः क्रूर स्वभाव [illegible] जाता है। इस दशा में वाणी और दृष्टि का [illegible] सम तुलन चलता रहता है कि उसे वैज्ञानिक [illegible] में एक ही वस्तु या एक ही उद्गम स्वीकार कि[illegible] जा सकता है। प्रेम, भय, घृणा, क्रोधादि का आ[illegible] शीघ्र प्रकट हो जाता है। परन्तु इन सब आद[illegible] का प्रतिघात केवल एक अस्त्र से किया जा सक[illegible] है वह है "वाणी का संयम" वास्तव में यदि मनु[illegible] एक आदर्श पुरुष बनने चले तो प्रथम अपने शब्दों को इतना वश में करले कि किसी को रोष प्र[illegible] का मौका ही न मिले और शब्दों का प्रकाशन कि[illegible] व्यक्ति पर तभी करे जब वह शान्त [illegible] एकान्त हो।

सभा समाजमें भाषण करनेका उद्देश्य श्रोता[illegible] का ज्ञान लाभ करना, उनका पथ प्रदर्शन करना हो[illegible] है, इसमें वे ही लोग सफल हो सकते हैं, जि[illegible] निस्वार्थता का अंश अधिक है, जो निष्कपट [illegible] चरित्रवान हैं। किसी सिद्धान्त पर चलने के लि[illegible] दूसरों से उसी का कहना ठीक है जो खुद उस[illegible] चलता है जिसके कार्य और भाषण में अन्तर [illegible] उसका दूसरों पर कहने लायक प्रभाव नहीं प[illegible] सकता।

कुछ व्यक्ति मजाक पसन्द होते हैं और अकार[illegible] इसे प्रयोग करके उपहासास्पद भी बन जाते हैं[illegible] इसमें यदि संयम से काम लिया जाय तो यह प्र[illegible] स्वास्थ्य वर्धक अवश्य है परन्तु मजाक का प[illegible] पर्याय वाची शब्द आलोचना है। यदि इसके [illegible] कटु आलोचना है तो संघर्ष भी है। चाहे जो [illegible] हो प्रयोक्ता की वाणी का वैज्ञानिक असर त[illegible] पड़ता है जब वह स्वयं चरित्र का जादू रखता [illegible] और सामयिक प्रयोग कर सकता हो।

भारत की महान जिम्मेदारी

(योगी अरविन्द घोष)

आधुनिक समय का सबसे बड़ा ईश्वरीय कार्य यह है कि वह कुछ पूर्ण योगी मनुष्यों को पैदा कर रहे हैं। इस समय संसार का भविष्य भारतवर्ष के ही योगियों के ऊपर निर्भर है। यद्यपि यहां काम करने वाले मनुष्य बहुत से हैं पर भारत के भविष्य के काम के लिए पूर्ण योगी पुरुषों की आवश्यकता है। क्योंकि संसार के जिस विराट् कार्य का भार भारत पर पड़ने वाला है, उसका भार पूर्ण योगी पुरुषों के बिना, साधारण बुद्धि जीवी या हृदय जीवी मनुष्य चाहे वे कितने ही बड़े नेता अथवा कार्यकर्ता क्यों न हों—नहीं सँभाल सकेंगे और न उनका सँभालना किसी प्रकार संभव ही है।

भविष्य में भारत को जिस विपुल विराट् कर्म का भार अपने ऊपर लेकर खड़ा होना पड़ेगा, उसी की सूचना स्वरूप सारे संसारमें एक विचित्र प्रकाश का होना आरंभ होगया है। आगामी तीस चालीस वर्ष के भीतर दुनियांमें एक विचित्र परिवर्तन होगा, सारी बातों में उलट पलट हो जायगा, उसके बाद जो नवीन जगत तैयार होगा उसमें भारत की सभ्यता ही संसार की सभ्यता होगी। भावी भारत का काम केवल भारत के लिए नहीं है, बल्कि समूचे संसार के लिए है, अतएव भारतको उन्हीं पूर्ण योगी मनुष्यों की तैयारी में लग जाना चाहिए जो इतने गुरु तर भार का सम्भार करने में समर्थ होंगे। यह काम नीरव मातृ साधना में आरंभ भी होगया है, योगियों के लिए सब कुछ संभव है। शिक्षा, समाज राज नीति, शिल्प, वाणिज्य आदि सभी क्षेत्रों में योगियों की अपूर्व प्रतिभा एक विचित्र संसार तैयार कर सकती है यह निश्चय है।

ईश्वर का स्वरूप।

(स्वामी रामतीर्थ)

यदि बैल एकत्र जमा होकर धार्मिक महासभा करें तो ईश्वर का वे क्या लक्षण करेंगे? वे ईश्वर को एक महान प्रतापी बैल बतावेंगे या वर्णन करेंगे कि जिसके डर किसी भी दूसरे बैल के प्राण छूट जायेंगे। यदि सिंह अपनी धार्मिक महासभा करें, तो उनकी ईश्वर की कल्पना एक सबसे बड़ा और सबसे बलवान सिंह होगी क्या अपनी योग्यता से परे की किसी चीज की धारणा तुम कर सकते हो। क्या तुम अपने आपसे बाहर कूद सकते हो? सिंहो को निर्णय के लिये बैठने और ईश्वर पर विचार आरंभ करने दो वे उसे भीम काय, दारुण सिंह बना देंगे। इसी तरह यदि डरे हुए लोग निर्णय के लिये बैठें और ईश्वर का विचार करने लगें तो वे लाचार होकर उसे महान दास-स्वामी हो क्या महानमालिक, भयानक हाकिम मानेंगे। इस प्रकार यहूदियों ने स्वभावतः परमेश्वर का भीमकाय प्रतापी शासक, महान स्वामी चित्रित किया है।

अब समय है कि सारा संसार साहस पूर्वक सत्य के इस फुफकारते हुए सर्प को उठाकर पकड़ ले। पूर्ण सत्य तुम्हारे पास आता है, और तुम से कहता है कि "तुम परमेश्वर हो" परमेश्वर तुमसे पृथक नहीं है परमेश्वर इस स्वर्ग वा उस नर्क में नहीं है बल्कि तुम्हारे अपने आप अर्थात् निज स्वरूप में है।" यहां इस भावना के अनुभव में तुम्हें पूर्ण-स्वतंत्रता का लाभ है।

विषयों में रमणीयता नहीं है

(श्री० रामकरणसिंह जी वैद्य, जफरापुर)

विषयों की ओर चित्त वृत्तियों के आकर्षित होने में सबसे पहला कारण उनमें रमणीयता का बोध है विषयों में रमणीयता का भास बुद्धि के विपर्यय में होता है । बुद्धि के विपर्यय में अज्ञान सम्भूत अविद्या प्रधान कारण हैं । इस अविद्या से ही हमें असुन्दर में सुन्दर, बुद्धि, अनित्य में नित्य, बुद्धि— दुःख में सुख बुद्धि, अपवित्र में पवित्र बुद्धि, प्रेम हीनता में प्रेम बुद्धि और असत में सत बुद्धि हो रही है । उल्लू की भांति रात में दिवस और दिवस में रात्रि, इस अविद्या से ही दीखता है । इसीसे हमें अस्थि चर्मसार शरीर और तत्सम्बन्धीय तुच्छ पदार्थों में रमणीय बुद्धि हो रही है । मनुष्य जिस विषय का निरंतर चिन्तन करता है उसीमें उसकी समीचीन बुद्धि हो जाती है । यह समीचीनता ही रमणीयता के रूप में परिवर्तित होकर हमारे मनको आकर्षित करती रहती हैं । अब विचारना चाहिये कि विषयों में वास्तव में रमणीयता है या नहीं और यदि नहीं है तो रमणीयता क्यों भासती है ?

विचार किया जाय तो वास्तव में विषयों में रमणीयता बिल्कुल नहीं है । जो शरीर हमें सबसे अधिक सुन्दर प्रतीत होता है, उसमें क्या है, वह किन पदार्थों से बना है । रस, रक्त, मांस, मेद, हड्डी, मज्जा, चर्म, कफ, विष्ठा, मूत्र आदि पदार्थों से भरे इस ढांचे में कौन सी वस्तु रमणीय और आकर्षक है । अलग २ देखने पर सभी चीजें घृणास्पद प्रतीत होती हैं । यही हाल और सब वस्तुओं का है । वास्तव में रमणीयता, किसी (वस्तु) चीज में नहीं होती, वह कल्पना में रहती है । कल्पना ही रूढी बनकर तदनुसार धारणा कराने में प्रधान कारण होती है ।

हम लोगों को जहां गौर वर्ण अपनी ओर आकर्षित करता है, वहां हबशियों को काली सूरत ही रमणीय प्रतीत होती है, चीनमें कुछ समय पूर्व स्त्रियों के छोटे पैरों में लोगों की रमणीय बुद्धि थी । वह लड़कियों को बचपन से ही लोहे की जूतियां पहना दी जाती थीं, जिससे उनके पैर बढ़ने नहीं पाते थे । यद्यपि इससे उन्हें चलने में बड़ी तकलीफ होती थी परन्तु रमणीय बुद्धि से वाध्य होकर वे प्रसन्नता पूर्वक ऐसा करती थीं । मारवाड़ी स्त्रियां विचित्र गहने कपड़ों के भारी बोझ से कष्ट सहन करने पर भी उन्हें पहनकर अपने को सुन्दर समझती हैं पर गुजरात की सादी पोशाक धारण करने वाली स्त्रियां उसे देखकर हँसती हैं । ठीक इससे विपरीत मनोवृति मारवाड़ी बहनों की गुजराती बहनों की वेश भूषा के प्रति होती है । इससे यह सिद्धि हो जाता है कि रमणीयता किसी विषय में नहीं है, वह हमारे मन की कल्पना में है । हमने ही विषयों में सुन्दरता की कल्पना करली है ।

नश्वर पदार्थों और इन्द्रिय भोगों में रमणीयता नहीं है, हमने उनमें काल्पनिक रुचि उत्पन्न करली है जो क्षण क्षण पर टूटती और असत्य सिद्ध होती रहती है । वास्तविक सौन्दर्य तो शाश्वत और सत्य में है । आत्मा में परमात्मा में ही वास्तविक सुख है और विवेक द्वारा कर्म साधना से उसे प्राप्त किया जा सकता है । हमें स्मरण रखना चाहिए कि विषयों में रमणीयता नहीं वरन् आत्मा में है । जो वस्तु जहां है वह वहीं से प्राप्त हो सकती है ।

मनुष्य को दो वक्त तो निश्चय ही आपे में रहना चाहिये, एक तो भोजन करते समय और दूसरे भाषण के समय ।

+

साकार, निराकार और उसकी उपासना।

(श्री० रतनचंद जैन, गोटे गांव)

जिसे हम साकार कहते हैं वह केवल निराकार प्रतिबिम्ब है। यहां भौतिक दृष्टि से लीजिये, एक कुम्हार घड़ा बनाता है तब इसके पहले वह ने मस्तिष्क में उसकी सुन्दरता का रूप खींच ा है बिना मानसिक जगत में मकान का नकशा व कदापि मकान खड़ा नहीं किया जा सकता ती हालत में किसी भी कार्य का रूप होता है वह रूप, वह कल्पना, निराकार स्वरूप कहलाता है सृष्टि के उत्पत्ति में प्रथम ब्रह्माका विष्णुका अवतार इसके पश्चात् साकार होना और फिर ब्रह्मा पर राक्षसों का प्रहार होने पर विष्णु का साकार प्रगट होना यही अर्थ होता है कि वह निराकार विष्णु उस महान लोक की कल्पना ही रही होगी क्योंकि आखिरकार सृष्टि उत्पन्नके पहले विष्णुका अवतार किसका पालन करने को हुवाथा? इसी तरह इस्लाम मजहब कहता है कि खुदा ने फरिश्ता भेजकर आदम, और पीछे हव्वा को पैदा किया। अब सोचिये कि यह फरिश्ता कौन था मेरी समझ के मुताबिक कल्पना ही हो सकती है, वेद भी कहता है कि जब उस आद्य बीज शक्ति ने अथवा यूं कहिये ब्रह्म ने इच्छा की कि, "एकोहं बहुस्याम्" एक से अनेक होऊँ तब उसने यह सृष्टि बनाई, इनका निराकार ब्रह्म इच्छा ही को सूचित कराता है, चूंकि मेरा जैन धर्म इसे प्रकृति की रचना कहता है तब भी यह प्रश्न आवेगा कि प्रकृति नामक तत्व कहां से आया? अंत में वहां भी हम इसी निर्णय पर पहुंचते हैं कि कोई इच्छा करने वाला भी होगा ईसा धर्म भी फरिश्ता का आधार बताते हैं तब वहां बहुमत से यह साबित होता है कि संसार की बनावट को सृष्टि की उत्पत्ति की कल्पना पहले ऐसी ही बनी होगी जैसा रूप हमें आज दृष्टि गोचर हो रहा है!

परलोक में मनुष्य का मरने के बाद क्या होता है इस विषय पर नजर डालने से मालुम होताहै कि मनुष्य अपना सूक्ष्म शरीर साथ ले जाता है और स्वयं अपनी इच्छानुसार सूक्ष्म शरीर को लेकर जन्म ग्रहण कर लेता है आप यह न सोच बैठना कि मरने के समय अच्छी कल्पना करली जावे तो उत्तम जन्म धारण होगा यह गलत है क्योंकि हमारी इच्छा का संबंध कर्मों से बना है और कर्म के फल के मूजब ही इच्छा प्रबल होती हैं इसलिये तो यह धर्म, शास्त्र, मन्दिर, मूर्ति स्थापित कर दिये हैं और साकार रूप दे दिया है और ठीक भी है क्योंकि बालक जब स्कूल जाता है तब उसे वर्णमाला का बोध कराने के लिये उसकी मूर्ति बताना जरूरी है किन्तु जब वह उसे मस्तिष्क में उतार लेता है तब उसे चित्र मूर्ति के परिचय की जरूरत नहीं रह जाती इसी तरह ये मन्दिर स्कूल हैं जहां हम साकार मूर्ति द्वारा उस निराकार की ओर खिंचते हैं। यह हो सकता है कि मनुष्य जीवन भर वर्णमाला को मूर्ति देखे और उसको हृदयगंम न करे तो यह गलती खुद की है, यदि आप यह सोचें कि हजारों वर्षों में भी संसार निराकार को ग्रहण न कर सका तो मूर्तिकी सार्थकता रही कहां? तो इसका उत्तर यही हो सकता कि स्कूल में नये विद्यार्थी भी तो आते रहते हैं, उन्हें तो है। तब यह स्पष्ट सा हो जाता है कि साकार, निराकार यह दोनों वस्तु विशेष की अवस्थायें हैं, आप अपने को लीजिये, जब आप धूप में चलते हैं तो आपकी छाया आपके साथ रहती है आप जब शीशे में देखते हैं तो आपकी छाया अंदर दीखने लगती है आखिर सोचिये कि साकार की यह निराकार छाया नहीं तो क्या है जिस तरह उत्थान से पतन, स्वाभाविक क्रिया हैं, गेंद उछालने पर वापिस ही लौटती है उसी तरह आत्मा निराकार से साकार हुआ है साकार से निराकार होता है।

जिस काम शक्ति से प्रेम आलिंगन करते हैं, उससे प्रभु का स्पर्श भी होता है जिस क्रोध से हम

अपनी शारीरिक शक्ति का नाश करते हैं उस शक्ति से दुर्बुद्धि का नाश भी कर सकते हैं जिस अहंकार से हम पतन को पहुंचते हैं वह अहङ्कार हमको लक्ष्य तक पहुंचाने में भी सहायक हो सकता है जिस लोभ संवरण से हम स्वार्थ में अन्धे बनकर मनमानी करते हैं उसी लोभ शक्ति से हम विवेक रूपी भण्डार भी भर सकते हैं, अतएव इन सब शक्तियों को सत्कार्य में लगा दीजिये यही साकार रूप है और यही साकार उपासना है।

निराकार हमारा वह स्वरूप है, जो चेतन शुद्ध बुद्ध निर्विकल्प रूप आत्मा है जो तमाम संकल्प विकल्पों से परे है यही उसका यथार्थ रूप भी है कहा भी है, अहं ब्रह्मास्मि। पर वह रूप यथार्थ बन जाने का है केवल मौखिक सिद्धान्तों का नहीं, इसी लिये इसका निरूपण ज्यादा न करके मैं उस ठोस कार्य को लेता हूँ जिसके बिना सब ज्ञान विज्ञान अधूरा रह जाता है केवल बहस मुबाहिसे करते करत खूब समय हुवा अब कुछ व्यवहार में लीजिये। चरित्र के बिना ज्ञानी का ज्ञान फिजूल है कर्मों की श्रृङ्खला इतनी मजबूत है जिसे काटने की शक्ति कर्म ही रखते हैं जिस तरह गरम लोहे को ठंडा लोहा काटता है उसी तरह तामस वृत्तियां सात्विक वृति से मिटाई जा सकती हैं।

कहना पड़ता है कि चरित्र मुख्य है जिसे हम व्यवहार रूप कहते हैं संभव है, उक्त लेख में यह भ्रम पड़ गया हो कि पूजन या श्रद्धा साकार की की जावे या निराकार की? तो मैं अपनी व्यक्तिगत राय के मुताबिक कहूँगा कि हम मूर्तिवान है हमारा रूप साकार है, प्रत्येक पदार्थ जब अपनी समान शक्तिको ग्रहण किये हैं तब आप भी साकार प्रतिविम्ब की पूजा, उपासना योग समाधि अपनी श्रद्धा के माफिक करते जाइये, यही साकार भक्ति हमें ज्ञान, विवेक, दर्शन, चरित्र बल स्वयं देती चली जायेगी।

— — —

धैर्य

(श्री० मुरारी लाल शर्मा 'सुरस' गौघाट मथुरा)

मनु भगवान ने धर्म के दस लक्षणों का वर्णन करते हुए धृति (धैर्य) को पहला स्थान दिया है। वास्तव में धैर्य का स्थान जीवन में इतना ही ऊँचा है कि उसे प्रारंभिक सद्गुण माना जाय। हर एक कार्य कुछ समय उपरान्त फल देता है, हथेली पर सरसों जमते नहीं देखी जाती, किसान खेत बोता है और फसल की प्रतीक्षा में करता रहता है। यदि वह अधीर होकर बोये हुए दानों का फल उसीदिन लेना चाहे तो उसे निराशा ही होना पड़ेगा।

लोग किसी कार्य को उत्साह पूर्वक आरंभ करते हैं किन्तु फल की शीघ्रता के लिए इतने उतावले होते हैं कि थोड़े समय तक प्रतीक्षा करना या धैर्य धारण करना उन्हें सहन नहीं होता, फल स्वरूप निराश होकर वे उस काम को छोड़ देते हैं और दूसरा काम आरंभ करते हैं, फिर वह दूसरा भी छोड़ना पड़ता है, इसी प्रकार अनेकों अधूरे काम छोड़ते जातेहैं सफलता किसीमें भी प्राप्त नहीं होती। असफलताओं की एक लम्बी सूची अपने साथ लिये फिरते हैं, अयोग्य और मूर्ख बनतेहैं तथा जो हँसाई कराते हैं। प्रतिभा, योग्यता, कार्य शीलता बुद्धिमत्ता सभी कुछ उनमें होती है पर अधीरता और उतावलेपन का एक ही दोष उन सारे गुणों पर पानी फेर देता है।

धर्म का आरंभिक लक्षण धैर्य है। हमें चाहिए कि किसी कार्य को खूब आगा पीछा सोच समझ के बाद आरंभ करें किन्तु जब आरंभ करदें तो दृढ़ता और धैर्य के साथ उसे पूरा करने में लगे रहें। विघ्न कठिनाइयां, असफलताऐं, हानियां प्रायः हर एक अच्छे कार्य के आरंभ में आती देखी गई हैं पर यह बात भी निश्चय है कि कोई व्यक्ति शान्त चित्त से उस मार्ग पर डटा रहे तो एक दिन पथ के वे कांटे फूल बन जाते हैं और सफलता प्राप्त होकर रहती है।

आध्यात्मिक निष्ठा कैसे दृढ़ हो

(श्री० साधुराम रंधवें, सिटी कालेज, नागपुर)

मनुष्य अपने व्यक्तित्व को दो तरह से शासित कर सकता है। (१) आभ्यंतरिक प्रवृत्तियों को संयमित करके और (२) बाह्य प्रवृत्तियों को संयमित करके। पहिले मार्ग में साधक भीतर से बाहर की ओर आता है; दूसरे में वह बाहर से भीतर की ओर प्रविष्ट होता है।

पहिले मार्ग में चिन्तन—विचार शीलता की आवश्यकता है। साधक मनन के द्वारा अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकता है। अर्थात् अपनी मनो-वृत्तियों पर साधक जब विजय प्राप्त कर लेता है तब उसे बाह्य प्रकृति प्रभावित-शासित नहीं कर सकती। इस साधना की बागडोर आत्मबल, मनन, विचार शीलता और चिन्तन के हाथ में है। यहां हमें हर कदम पर सावधान रहना चाहिए, कहीं अपनी पगडंडी से फिसल न जांय।

दूसरे मार्ग में बाह्य प्रवृत्तियों को संयमित किया जाता है। इसमें चाहिए परिस्थितियोंकी अनुकूलता। साधक जैसा बनना चाहता है, उसीके अनुकूल अपना वातावरण निर्मित करना होगा। मित्रों का चुनाव, दिनचर्या का क्रम आदि जिन भी उपकरणों से उसका अधिकतर संसर्ग रहता है, उन उपकरणों को वह अपने अनुकल कर ले। बस, फिर उसे अपना मार्ग सहल और निरापद जान पड़ेगा। इसमें पहली मुसीबत यही है कि वह अनुकूल चुनाव—अनुकूल वातावरण कैसे निर्मित करे। इस पथ का पथिक अपनी अनुकूल परिस्थिति के बाहर कदम रखते ही अक्सर फिसल जाता है—अपने को अनु-तीर्ण पाता है और महसूस करता है कि अभी वह इतना निष्ठावान् नहीं बन सका है कि प्रतिकूल वातावरण में भी स्वस्थ रह सके—अपने व्यक्तित्व को—अपने अहमत्व को अपने आत्मबल को अचल रख सके।

तीसरा मार्ग बिलकुल निराला ही है। इसमें साधक अपने को परमेश्वर की इच्छा पर छोड़ देता है। वह अदृष्ट के प्रवाह में स्वच्छन्द बहने लगता है। उसे रास्ते का ख्याल नहीं रहता। एक मात्र ख्याल रहता है अपने लक्ष्य का—उस परमोज्ज्वल सत्य ज्योति का। परन्तु इस साधक को परमेश्वर में अपनी श्रद्धा दृढ़ और अमल रखनी चाहिए; अन्यथा वह परमेश्वर के नाम पर अपने अहमत्व के प्रवाह में ही वह जावेगा और जब आक्षिप्त किया जावेगा तो साहस के साथ प्रत्युत्तर देगा—"परमेश्वर की ऐसी ही इच्छा है, हम क्या करें? वह ऐसा ही कराता है, शायद उसकी ऐसी ही प्रेरणा हो।" यह प्रकृति पतन की ओर ही ले जावेगी। वस्तुतः यह मार्ग साधना में प्रविष्ट होने वाले साधक के लिए घातक ही सिद्ध होगा। यह साधना पुष्टि मार्ग की है और तदनुसार यही कहना चाहिए कि यह 'स्टेज' परमेश्वर के अनुग्रह द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। इस दर्जे को प्राप्त करने के लिए प्रथम कथित दो साधन ही उपयुक्त सिद्ध होंगे।

---

* सात्विक सहायताऐं *

इस मास ज्ञान यज्ञ के लिए निम्नलिखित महा-नुभावों ने अपनी धर्म उपार्जित कमाई में से यह सात्विक सहायता भेजी है। अखंड ज्योति इन महानुभावों के प्रति अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करती है।

१०) राजकुमार हरभगतसिंह भण्डरा स्टेट।
५) श्री० भीमसवजी सोलंकी, युद्ध सैनिक।
४) श्री० घासीरामजी कुलमी, पलारया।
३) श्री० बाबूलाल जी गोयल, शिवपुरी।
२) पं० देवीसहायजी वैद्य, मैनपुरा।
२) पं० राधेमोहन मिश्र, बहराइच।
२) पं० धर्मपाल सिंह जी, रुड़की।
१) महात्मा जयरामपुरी जी महाराज ऊँचा।
१) श्री० माधवनारायणजी तिवारी पटवारी, कदमपुर

मनोरंजक कथा—

दृढ़ विश्वास से भगवत दर्शन

(श्री० माधव तिवारी पटवारी कमदपुर)

किसी गांव में एक चोर रहता था। वह रात को चोरी करने के लिये निकला एक महाजन के यहां हरि कथा हो रही थी, उनमें पंडित जी भगवान के आभूषणों का वर्णन कर रहे थे, कि उनके शरीर पर वेश कीमती आभूषण धारण किये हैं, सोने का रत्न जटित मुकुट है, गलेमें कीमती कंठे शोभायमान हैं, ये शब्द चोर के कान में पड़े उसने वह माल चुराने का निश्चय किया उसने सोचा इसका पता पंडितजी को है। वह वहीं छिपकर बैठ गया कथा समाप्ति के बाद पंडित जी सामान बटोरकर घर रवाना हुये, चोर ने रास्ते में घेर लिया और कहा कि या तो जो तुम्हारे पास माल है देदो नहीं तो उस आदमी का पता बताओ कि जिसके शरीर पर करोड़ों का माल है जिसकी चर्चा तुमने अभी की थी। पंडित जी घबरा गये उन्होंने पीछा छुड़ाने के लिये कहा कि वह आदमी जमुना किनारे जंगल में गौवें चराता है व बंसी बजाता है। बस चोर पंडित जी को छोड़ जमुना किनारे खोज में चल दिया, व इधर उधर ढूंढ़ने लगा ढूंढते २ पांच-छः दिन बीत गये परन्तु कहीं पता नहीं लगा भूख से पीड़ित व हताश होकर बैठ गया। थोड़ी देर बाद भगवान कृष्ण आभूषण युक्त (जैसा की पंडितजी ने कहा था) गोपों के झुंड में नजर आये उनको देखते ही चोर प्रसन्न हो गया और हाथ में डंडा लेकर भगवान पर लपका। भगवान उसका मतलब समझ गये, उन्होंने पूछा कि तू कौन है? यहां किस लिये आया है? उसने कहा कि मैं चोर हूँ, जो तुमने आभूषण पहिने हैं उनको मैं चुराने आया हूँ। भगवान ने वहीं पास में खजाना बतला दिया कि तुझसे जितना माल उठे उतना ले जा। बस चोर प्रसन्न होकर उसने जितना धन उठा गठरी में बांध कर घर ले आया। यहां पंडित जी को इनाम देने के लिये आया और कहने लगा कि पंडित जी साहूकार तो अच्छा मालदार बतलाया। पंडित जी आश्चर्यमें डूब गये और कहने लगे कि भाई वह साहूकार नहीं है वह भगवान कृष्ण थे। उनके दर्शन हमें भी कराओ बस पंडितजी चोर के पीछे हो लिये व वहां जाकर छिप गये थोड़ी देर बाद चोर को भगवान दीख गये परन्तु पंडितजी को नहीं दीखे तब चोर भगवान से प्राथना करने लगा कि प्रभो आप पंडितजी को क्यों नहीं दर्शन देते भगवान कहने लगे कि जिस प्रकार तेरा दृढ़ विश्वास है वैसा पंडित जी का नहीं है इसलिये उनको दर्शन नहीं होते।

जिस प्रकार चोर ने पंडितजी के कहने पर दृढ़ विश्वास कर लिया उसी प्रकार हर एक मनुष्य को चाहिये कि संत महात्मा विद्वान पुरुषों के विवेक युक्त वचनों का नियम से पालन करे उसको अवश्य इच्छित सफलता मिल सकती है। जो काम दृढ़ विश्वास भावना से किया जाता है वह अवश्य फलीभूत होता है।

यदि तुम्हें जीवन को प्यार करना है तो समय को फिजूल नष्ट न करो, समय ही तो जीवन है।

+

यदि तुम संसार को वश में तथा अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हो, तो एक आदत छोड़नी होगी वह यह है-कटु वचन।

+

अच्छा व्यापारी वही है,जो अपना समय ईश्वर में तथा धन गरीबों में दान करता रहता है।

+

रजत-कण

(श्री० बटेश्वर दयाल जी बकेवरिया, शास्त्री, भिंड)

संयम और स्वतंत्रता जिस तरह एक ही सिक्के के दो बाजू हैं, उसी प्रकार नम्रता और निर्भयता भी एक ही वस्तु के दो रूप हैं। स्वतंत्रता में जिस प्रकार अपने अधिकारों की रक्षा की प्रतिज्ञा है, उसी प्रकार संयम में दूसरे के अधिकारों की रक्षा का आश्वासन है। जो किसी को डराता नहीं, वास्तव में वह किसी से डरता नहीं है। जो औरों को डरा सकता है, वह जरूर दूसरों से डरता है।

जो अपनी गलती को खुद ही देखकर सुधार लेता है, और उसका प्रायश्चित कर लेता है, वह साधु है। जो गलती बताने पर मान लेता, और खेद प्रकाशित करता है, वह सज्जन और सद्गृहस्थ है। जो गलती मालूम होने पर भी हठ करता है वह नर-पशु है। जो सही और गलती की तमीज ही नहीं कर पाता, या जो गलत को सही, और सही को गलत मानता है, वह पशु है।

धार्मिक, राजकीय, अथवा वैज्ञानिक दलीलें जो किसी एक स्थान और एक समय में सही मानली गई हैं, वही दूसरे स्थान और दूसरे समय में गलत भी हो सकती हैं। परन्तु व्यवहार नीति एक त्रिकाल सत्य है। इससे लोगोंको सच्चा सुख-प्रेम और शान्ति प्राप्त हो सकती है।

जीवन क्षणभंगुर अवश्य है, पर जिस जीवन में सोना जैसा आकर्षण है, दीपक जैसा प्रकाश है, और पुष्प जैसा पराग है, वहां अमरता है।

स्त्री, पुत्र और धन से किसी को भी सच्ची तृप्ति नहीं हो सकती। यदि हो सकती होती तो अब तक किसी न किसी को अवश्य हुई होती। सच्ची तृप्ति का विषय है केवल निजात्म तत्व की प्राप्ति। आत्म तत्व की प्राप्ति होजाने पर वह प्राणी सदा के लिये तृप्त हो जाता है।

गृहस्थ में ईश्वर प्राप्ति।

(श्री० मंगलचन्द जी भण्डारी, अजमेर)

एक बार एक राजा ने अपने मंत्री से पूछा कि "क्या गृहस्थ में रहकर भी ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है?" मंत्री ने उत्तर दिया हां, श्रीमान् ऐसा हो सकता है। राजा ने पूछा कि यह किस प्रकार संभव है? मंत्री ने उत्तर दिया कि इसका ठीक ठीक उत्तर एक महात्मा जो दे सकते हैं जो यहां से गोदावरी नदी के पास एक घने बन में रहते हैं।

राजा अपने प्रश्न का उत्तर पाने के लिए दूसरे दिन मंत्री को साथ लेकर उन महात्मासे मिलने चल दिया। कुछ दूर चलकर मंत्रीने कहा—महाराज, ऐसा नियम है कि जो उन महात्मा से मिलने जाता है वह रास्ते में चलते हुए कीड़े मकोड़ों को बचाता चलता है यदि एक भी कीड़ा पांव से कुचल जाय तो महात्मा जी श्राप दे देते हैं। राजा ने मंत्री की बात स्वीकार करली और खूब ध्यान पूर्वक आगेकी जमीन देख देखकर पैर रखने लगे। इस प्रकार चलते हुए वे महात्माजी के पास जा पहुंचे।

महात्मा ने दोनों को सत्कार पूर्वक बिठाया और राजा से पूछा कि आपने रास्ते में क्या क्या देखा मुझे बताइए। राजा ने कहा भगवन् मैं तो आपके श्राप के डर से रास्ते के कीड़े मकोड़ों को देखता आया हूँ। इसलिए मेरा ध्यान दूसरी ओर गया ही नहीं रास्ते के दृश्यों के बारे में मुझे कुछ भी मालूम नहीं है।

इसपर महात्मा ने हँसते हुए कहा—राजन् यही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है। मेरे श्राप से डरते हुए तुम आये उसी प्रकार ईश्वरके दंडसे डरना चाहिए, कीड़ों को बचाते हुए चले इसी प्रकार दुष्कर्मों से बचते चलना चाहिए। रास्तेमें अनेक दृश्योंके होते हुए भी वे दिखाई न पड़े। जिस सावधानी से तुम मेरे पास आये हो उसी से जीवन क्रम चलाओ तो गृहस्थ में रहते हुए भी ईश्वर को प्राप्त कर सकते हो। राजा ठीक उत्तर पाकर संतोष पूर्वक लौट आये।

दुःखों का स्वागत कीजिये ।

(श्री० प्रेमनारायण जी पाण्डेय, 'प्रेम' कानपुर)

दुःख से लोग बहुत डरते हैं और चाहते हैं कि वह न आवे, फिर भी न चाहते हुए भी वह आ ही जाता हैं, इसमें महान् ईश्वरीय प्रयोजन है। मनुष्य के अहंकार और दुर्भावों का शमन शोधन करने के लिए दुःख का आगमन ऐसी रामवाण औषधि की तरह साबित होता है जो पीने में कड़ुई होते हुए भी व्याधि का नाश कर डालती है। जब नाना प्रकार की यंत्रणाऐं घोर दुःख, संकटों का अपार समूह उमड़ता चला आताहै और बाहुबल कुछ काम नहीं करता, शक्तियां असमर्थ होजाती हैं तब मनुष्य सोचता है कि मुझसे भी ऊंची कोई शक्ति मौजूद है और उस शक्ति का विधान इतना प्रबल है जिसे मैं तोड़ नहीं सकता।

नास्तिकता से आस्तिकता की ओर, अधर्म से धर्म की ओर, अहंकार से नम्रता की ओर ले चलने की क्षमता दुःखों में है। जो मनुष्य हजार उपदेशों से भी कुपथ पर चलने से बाज नहीं आते थे वे बिपत्ति की एक करारी ठोकर खाकर तिलमिला गये और ठीक रास्ते पर आगये। विपत्ति में ईश्वर का स्मरण आता है और अधर्म के दुखद परिणामों को देखकर सुपथ पर चलने की इच्छा होती है। कष्टों की खराद पर घिसे जाने के उपरान्त मनुष्य की बुद्धि, सावधानी, क्रियाशीलता सभी तेज होजाती हैं, संसार में जितने महापुरुष हुए हैं वे विपत्तियों की खराद पर खूब रगड़ रगड़ कर घिसे गये हैं तब उनका उज्वल स्वरूप दुनियां को दिखाई पड़ा है।

विपत्ति से डरने की कोई बात नहीं हैं, कष्टों में ऐसा कोई तत्त्व नहीं है जो अन्ततः हानिकर सिद्ध हो। एक पहुंचे हुए ईश्वर भक्त का कहना है कि "ईश्वर जिसे अपनी शरण में लेना चाहते हैं उसके पास दुख भेजते हैं ताकि वह मोह को छोड़कर प्रेम के, भक्ति के, मार्ग पर पदार्पण करे।"

एक काम करो ।

(श्री० देवराज जी विशारद, सातों जो

करने योग्य कार्यों का समूह आगे खड़ा जीवन छोटा है और कार्य बहुत हैं, मनुष्य है कि यह करूं, वह करूं, इस कार्य में स पाऊँ, उस लाभ को उठाऊँ। इस प्रकार की नाओं में बहुतसी उचित होती है बहुतसी अ आरंभ किये हुए कार्यों में से बहुतों में वह हो जाता है और बहुतों में असफल रहना पड़ कभी कभी बहुत से कार्य एक साथ इस प्र सामने आते हैं जिनमें से सर्वोत्तम का चुना में बड़ी असुविधा होती हैं।

आपके सामने कितने ही कार्य क्यों न हों, से किसी को कितना ही अधिक पसंद क्यों न हो पर एक बात का विशेष रूप से ध्यान रखि और वह है-"कर्तव्य पालन"। अपना जो है, अपने ऊपर जो जिम्मेदारी है उसे पूरी तरह ठीक प्रकार से निबाहना चाहिए। वेद, शास्त्र, पुराण सबका एक ही मन्तव्य है कि मनुष्य अपना कर्तव्य भले प्रकार निबाहना चाहिए, कठिनाई सहकर भी अपने उत्तरदायित्व की करनी चाहिए।

मायाग्रस्त मनुष्य इन्द्रिय भोगों में रुचि ले और ललचाने वाली चीजों को प्राप्त करने को भले बुरे का, धर्म अधर्म का विचार छोड़ देते हैं अमीर बन सकते हैं, दौलतमन्द कहा सकते हैं, और अधिकार प्राप्त कर सकते हैं पर जीवन का सुख प्राप्त नहीं कर सकते। इतिहास में जिन पुरुषों के नाम स्वर्णाक्षरोंमें लिखे हुए हैं और व वर्ष बीत जाने पर भी जिनकी विमल कीर्ति भी चारों ओर फैल रही हैं उन्होंने एक काम प्राण प्रिय बनाया था और वह था 'कर्तव्य पालन' इसीलिए हम कहते हैं कि पाठको-एक काम अव करो-अपने कर्तव्य को दृढ़ता के साथ पूरा करो

त्याग करो—और मिलेगा।

(जान० एम० प्रसाद, बैलूक)

सारपत नगर में एक विधवा स्त्री रहती थी। उसके केवल एक ही पुत्र था। एक बार उस नगर में भारी दुर्भिक्ष पड़ा। गांव के गांव उजड़ने लगे। भूख के मारे लोग काल के गाल में समा रहे थे।

एक दिन इलियाह नाम एक धर्मी पुरुष परमेश्वर की ओर से इस स्त्री के पास भेजा गया। इलियाह ने जाकर उससे रोटी मांगी। स्त्री ने उत्तर दिया कि उसके पास घड़े में केवल एक मुट्ठी आटा तथा कुप्पी में थोड़ा सा तेल है जिससे रोटी बनाकर 'एक ही बार भोजन करके वे दोनों माता पुत्र मर जायेंगे, क्योंकि दूसरी बार के लिये एक दाना तक शेष नहीं है। इलियाह ने कहा "जैसा मैं कहता हूँ, वैसा ही कर", क्योंकि परमेश्वर कहता है कि "न तेरे घड़े का आटा और न तेरी कुप्पी में का तेल चुकेगा।" इसलिये परमेश्वर पर विश्वास करके अपनी चिन्ता उसी पर डाल और पहिले मुझे भोजन बनाकर खिला।

यह बड़ा ही टेढ़ा सवाल था। स्त्री ने सोचा कि यहां तो खुद भूखे मरने की नौबत है, अब क्या करूं। इतने ही में उसके हृदय से आवाज आई कि त्याग का प्रतिफल अवश्य ही मिलता है। उसने तुरन्त ही भोजन बनाया और उसे खिला दिया।

आश्चर्य की बात है कि वह जितना आटा और तेल निकालती थी, वह उतना ही बढ़ता जाता था। उस दिनसे उस स्त्री को मालूम हो गया कि भगवान हमारी कठिन से कठिन परिस्थिति में भी हमारा विश्वास बढ़ाता है। क्या हम भी इस विधवा स्त्री के सदृश्य त्याग करते हैं? और परमेश्वर पर विश्वास रखते हैं?

पवित्र जीवन।

(श्री० गुरुचरण जी आर्य, बिहिया)

मानव जीवन में व्यवहृत जितने अनु[illegible] (नियम, व्रत) सत्य, पूर्ण पवित्रता स्थापित [illegible] सकते हैं, उनमें सबसे सरल, मीठा अनुष्ठान 'ई[illegible] पर विश्वास कर लेना है" मनुष्य को यदि अ[illegible] चरित्र को ऊँचा उठाना है तो ईश्वरी नियमो[illegible] साथ २ आत्मिक बल बढ़ाकर, स्वाध्याय, सं[illegible] और तप को भी अपना एक मात्र लक्ष्य रखना [illegible] इसी लक्ष्य के सहारे हम अपने अन्तिम लक्ष्य [illegible] ईश्वर के आत्म स्वरूप गुणों को प्राप्त करने [illegible] क्षमता उत्पन्न कर सकेंगे।

जैसे २ हमारा स्वाध्याय बढ़ेगा, हमारी आ[illegible] संतोष व्रतधारी बनेगी और जब संतोष का पू[illegible] रूपेण समावेश हो चुकेगा तो हमारा तप पू[illegible] मानव का स्वरूप लोकोपकारी वृत्तियों को जी[illegible] देकर हमें हमारे एक मात्र लक्ष्यकी पूर्ति में सहा[illegible] होगा। बस यही रूप मानव जाति का विश्व शां[illegible] दायक पवित्र जीवन है।

सन् ४४ का विशेषाङ्क

"मैस्मरेजम अङ्क" होगा।

मैस्मरेजम विद्या संबंधी सारे गुप्त प्रक[illegible] रहस्य इसमें खोलकर रख दिये जायेंगे। जिनक[illegible] सहायता से आप स्वयं मैस्मरेजम में निपुण [illegible] सकते हैं।

१ जनवरी सन् ४४ को प्रकाशित होगा

आज से ही प्रतीक्षा कीजिए।

दौलत का नशा।

(श्री० अविनाशचन्द्र खरे, सिवनी)

एक दिन मंगरू किसान खेत जोतने गया। उसके पास दो रोटियां थीं। उसने यह सोचकर कि काम करने के बाद रोटियां खा लूंगा रोटियां एक झाड़ी के पास रख दीं। झाड़ी के पास ही एक भूत बैठा था। भूत को भूख बहुत जोरोंसे सता रही थी। भूत ने रोटियां खालीं।

किसान जब दोपहर को काम समाप्त करने के बाद अपनी भूख मिटाने झाड़ी के पास आया तो देखा कि रोटियां नदारद हैं। उसने सोचा किसी भूखे ने ही रोटियां खाई होंगी। यह सोचकर उसने पानी पी लिया और फिर काम में लग गया।

भूत किसान का यह कार्य देखकर अपने राजा अधर्म के पास गया और उन्हें सारा हाल सुनाया। अधर्म ने सोचा यदि संसार में इसी प्रकार स्वार्थ की भावना का लोप और संतोष की भावना बढ़ती जायगी तो अनर्थ हो जायगा। यह सोचकर उसने भूत से कहा कि तुम जाकर मनुष्यों में संतोष की भावना का लोप कर दो।

भूत लौटकर विचार करने लगा कि क्या यत्न किया जाय! सोचते २ उसे एक उपाय सूझ गया। उसने एक किसान का रूप धर लिया और मंगरू किसान के यहां नौकर हो गया। उसने पहले साल मंगरू को दलदल में खेती बोने की सलाह दी। उस साल पानी बिल्कुल न गिरा पर मंगरू को लाभ ही हुआ। दूसरे वर्ष उसने एक टीले पर दाना बोने की सलाह दी। भाग्यवश उस साल बहुत जोरों का पानी बरसा और सब किसानों की फसल सड़ गई पर मंगरू को जरा भी नुकसान न हुआ। मंगरू का घर जौ के बोरों से भर गया। भूत ने मंगरू को जौ की शराब बनाना सिखा दिया। किसान अपने साथियों के साथ शराब का सेवन करने लगा।

भूत किसानकी दशा देखकर अपने राजा के पास गया और उनसे विनती की महाराज चलकर जरा उस किसान की दशा देख लीजि[illegible] भूत और अधर्म राज किसान के घर आये। [illegible] उन्होंने देखा कि सब किसान शराब पी रहे हैं। इतने में एक साधू भीतर आया। मंगरू ने उसे [illegible] कर कहा भीतर क्यों घुसे आते हो निकल जा[illegible] बाहर यहां कुछ न मिलेगा।

अधर्म राज किसान की दशा देखकर बहुत [illegible] हुए। उन्होंने भूत की तारीफ करते हुए कहा य[illegible] यही हाल रहा तो पृथ्वी पर अधर्म का राज्य [illegible] जायगा।

शराब पीकर वे लोग आपस में गाली गलौज [illegible] मार पीट करते, और तरह तरह के कुकर्मों [illegible] निर्लज्जता पूर्वक लगे रहते।

अधर्म राज ने किसानों की दशा देखकर भू[त] से पूछा तुमने इन पर कौनसा मन्त्र फूंक दिया है [illegible] देखो तो संतोष की भावना का लोप हो गया [illegible] भूत ने कहा महाराज यह नियम है कि जब त[क] मनुष्य को उसके खाने भर को भोजन मिलता [illegible] तब तक तो उसे संतोष रहता है पर जहां उसे कु[छ] अधिक भोजन मिला कि वह विलास वासनाओं [में] लिप्त हो जाता है। मैंने इसी मन्त्र का उपयो[ग] मंगरू किसान पर किया। उसे अधिक दाना दि[या] और उसकी क्या दशा हुई यह आप स्वयं देख [रहे] हैं। इस प्रकार संसार से सन्तोष भावना का लोप होता गया।

वीर वह है जिसने दूसरों को परास्त कर दि[या] बहादुरों में भी बहादुर वह है जिसने अपने [को] जीत लिया।

+

चन्दन स्वयं घिसकर सुगन्धि देता है, मनुष्यों का यही काम है।

+

मनुष्य को देवता बनाने वाली पुस्तकें।

जो ज्ञान युगों के प्रयत्न से मिलता है उसे हम अनायास ही आपके सामने उपस्थित करते हैं।

यह बाजारू किताबें नहीं हैं, इनकी एक एक पंक्ति के पीछे गहरा अनुभव और अनुसंधान है। विनम्र शब्दों में हमारा दावा है कि इतना खोज पूर्ण अलभ्य साहित्य इतने स्वल्प मूल्य में अन्यत्र नहीं मिल सकता।

(१) मैं क्या हूँ — मूल्य ।=)
(२) सूर्य चिकित्सा विज्ञान ।=)
(३) प्राण चिकित्सा विज्ञान ।=)
(४) पर काया प्रवेश ।=)
(५) स्वस्थ और सुन्दर बननेकी अद्भुत विद्या ।=)
(६) मानवीय विद्युत के चमत्कार ।=)
(७) स्वर योग से दिव्य ज्ञान ।=)
(८) भोग में योग ।=)
(९) बुद्धि बढ़ाने के उपाय ।=)
(१०) धनवान बनने के गुप्त रहस्य ।=)
(११) पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि ।=)
(१२) वशीकरण की सच्ची सिद्धि ।=)
(१३) मरने के बाद हमारा क्या होता है ।=)
(१४) जीव जन्तुओं की बोली समझना ।=)
(१५) ईश्वर कौन है? कहां है? कैसा है ।=)
(१६) क्या धर्म? क्या अधर्म? ।=)
(१७) गहना कर्मणो गति ।=)
(१८) जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर तात्विक प्रकाश ।=)
(१९) पञ्चाध्यायी (अजिल्द) ।।-)

नोट—कमीशन के लिये लिखा पढ़ी करना बिलकुल व्यर्थ है। हां ६ से अधिक पुस्तकें लेने पर डाक व्यय नहीं लिया जायगा।

—मैनेजर 'अखण्ड-ज्योति' कार्यालय, मथुरा।

इसी जीवन में स्वर्ग का आनन्द लीजिये।

लौकिक और पारलौकिक सफलता की व्यवहारिक शिक्षा।

आध्यात्मिकता आनन्दमय जीवन बितानेकी कला है। यदि आप इसी जीवन में स्वर्ग का प्रत्यक्ष आनन्द भोगने की इच्छा करते हैं तो निश्चय समझिये आप उसमें सफल हो सकते हैं। कैसे? इस प्रश्न का रहस्य जानने के लिये इन पुस्तकों को पढ़िये। जीवन की व्यवहारिक सफलता के गुप्त मन्त्र इन पुस्तकों में मिलेंगे:—

(२०) शक्ति सञ्चय के पथ पर ... ... ।=)
(२१) आत्म गौरव की साधना ... ... ।=)
(२२) प्रतिष्ठा का उच्च सोपान ... ... ।=)
(२३) मित्र भाव बढ़ाने की कला ... ... ।=)
(२४) आन्तरिक उल्लास का विकाश ... ... ।=)
(२५) आगे बढ़ने की तैयारी ... ... ।=)
(२६) आध्यात्म धर्म का अवलम्बन ... ... ।=)
(२७) ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन ... ... ।=)

कमीशन देना कतई बन्द है। इसलिये इसके लिये लिखा पढ़ी करना बिलकुल व्यर्थ है। ह या इससे अधिक पुस्तकें लेने पर डाक खर्च हम अपना लगा देते हैं। आठ से कम पुस्तकें लेने प डाक ग्राहक के जिम्मे है।

—मैनेजर "अखण्ड-ज्योति" कार्यालय, मथुरा।

नश्वर संसार

(लेखक—श्री० पं० प्रेमनारायण शर्मा, गिर्दावर कानूनगो, आगरा)

(१)

जीर्ण शीर्ण पत्तों से निर्मित यह नश्वर संसार ।
मृत्यु और जीवन इसके आने जाने के द्वार ॥
बड़े बड़े विद्वान, शूर, सामन्त, गुणी, धनवान ।
हाथ पसारे चले गये सब, छोड़ साज सामान ॥

(२)

वह निर्धन जो जीवन में दो दाने जोड़ न पाया ।
वह अमीर जिसकी कोठी में भरी पड़ी थी माया ॥
दोनों लोट रहे मरघट में, मिली धूलि में काया ।
इस सरायमें किसको रहना ? एक गया इक आया ॥

(३)

जिन महलों में कलतक पुजती थी वैभव की रानी ।
आज गूंजती उन्हीं खँडहरों में उलूक की बानी ॥
जिन प्रासादों में था कल तक धन का, बलका, डेरा ।
आज वहां कौए, चिमगादड़, करते रैन बसेरा ॥

(४)

चलती चक्की में आकर पिसते जाते हैं दाने ।
फिर क्यों लगा अभागा मानव, इसपर भी इतराने ॥
पानी भरी खाल जिसमें सांसों का ताना बाना ।
कौन ठिकाना इसका बन्दे, आज रहे कल जाना ॥

(५)

तृष्णा लोभ, मोह, मद, ममता, मत कर पाप कमाई ।
वह करले जिसके कारण तूने नर देही पाई ॥
पथिक ! दूर है तेरी मंजिल, रस्ते को कुछ धरले ।
पल में परलय होगी, जो करना हो सो अब करले ॥